International Journal of Geography, Geology and Environment

**P-ISSN:** 2706-7483
**E-ISSN:** 2706-7491
IJGGE 20224; 6(1): 400-403
www.geojournal.net
Received: 05-01-2024
Accepted: 13-02-2024

**पवन कुमार जग्रवाल**
शोधार्थी, सहायक आचार्य, (भूगोल)
विधा संबल योजना राजकीय कन्या महाविधालय, बज्जू, बीकानेर, राजस्थान, भारत

**Corresponding Author:**
**पवन कुमार जग्रवाल**
शोधार्थी, सहायक आचार्य, (भूगोल)
विधा संबल योजना राजकीय कन्या महाविधालय, बज्जू, बीकानेर, राजस्थान, भारत

# जलीय संस्कृति और राजस्थान

## पवन कुमार जग्रवाल

**सारांश**
''जल ही जीवन हैं।'' यह बात प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक हमेशा सार्थक रहीं हैं क्योंकि इस सृष्टि पर जल के बिना न तो मानव और न ही जीव–जन्तु और पेड़ पौधों का अस्तित्व सम्भव हैं। इस संसार में जल का सृष्टि के रचना काल से ही मानव, जीव–जन्तुओं और पेड़–पौधों के द्वारा किया जाता रहा है। जल हमारे जीवन का आधार होने के कारण ही समय समय पर मनुष्य ने न केवल जल का उपयोग किया हैं बल्कि इसके संरक्षण के उपाय भी खोंजे हैं। दूनियाँ के सभी क्षेत्रों में जहाँ जल कम या अधिक मात्रा में पाया जाता हैं वहॉ पर जल के सरंक्षण के उपाय खोजे गये है।
भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है जल संस्कृति। वर्षा जल के पृथ्वी पर गिरने से लेकर उसका वर्ष भर कैसे सदुपयोग हो, ऐसे सभी उपायों को सहेजकर जन–जन के व्यवहार में शामिल किया। थार मरूस्थल से लेकर दोआब क क्षेत्र में जल की समुचित व्यवस्था बनी रहे? इन सबके लिए हमारे पुरखों ने ऐसी व्यवस्था स्थापित कर दी थी कि जिससे जल के साथ भावनात्मक संबंध बना रहें।[1]
भारत के सन्दर्भ में जल का और भी अधिक महत्व बढ़ जाता हैं क्योंकि भारतीय धार्मिक ग्रन्थों मं जल को देवता के रूप में देखा गया हैं। प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान समय तक भारत में जल की पूजा की जाती रही हैं। जल को एक पवित्र तत्व के रूप में देखा जाता रहा है। भारत में सैकड़ां नदियॉ रही हैं जिनकी देवी के रूप में देखा जा सकता हैं। इन नदियों में गंगा, यमुना, सरस्वती, ब्रहमपुत्र, कावेरी, सतलज, आदि प्रमुख रही हैं। इहलौक और परलौक दोनों में ही जल के महत्व को विश्व की अपेक्षा भारत में अधिक महत्व दिया जाता रहा हैं। राजस्थान विशेष की दृष्टि से जल हमारे लिए और भी प्रभावी बन जाता हैं क्योंकि राजस्थान एक रेतीला क्षेत्र हैं। इस कारण यह हमेशा ही जल का अभाव पाया जाता हैं। इसी कारण प्राचीनकाल में जब राजतंत्र प्रचलित था, तब विभिन्न शासकों के द्वारा जल को लेकर समय–समय पर अनेक उपाय किये गये ताकि जल को सरंक्षित किया जा सके। जल सरंक्षक की प्राचीन विधियाँ न केवल प्राचीन काल में बल्कि आज भी हमारे लिए उपयोगी सिद्व हो रही हैं। इस प्रकार जल को लेकर एक नवीन संस्कृति विकसित हो गई हैं, जिसे जलीय संस्कृति कहा जा सकता हैं। वेदोत्तर काल के सभी ग्रंथों में जल का महत्व भी स्पष्ट किया गया हैं, उसके विभिन्न उपयोग स्पष्ट किए गए हैं और उसके संग्रहण के उपाय गए हैं, अतिवृष्टि से, बाढ़ से, जलप्रपात से और जल के संक्रमण से बचने के उपाय भी बतलाए गए हैं। भारत में प्राचीन धर्मशास्त्रों में जल को प्रदूषित करना अपराध माना जाता था। मनु ने स्पष्ट कहा हैं कि जल में गंदी चीज कभी भी न फेंकी जाए ''नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत्। अमेध्यलिप्तं अन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा।''[2] मूत्र, विष्ठा, थूक अथवा अन्य कोई भी बाहरी चीज जल में न फेंकी जाए, यह इससे स्पष्ट होता हैं। मध्यकाल में देश के उन अंचलों में जहॉ नदियों का जल पूर्णतः उपलब्ध नहीं होता था, जो मरूस्थलीय क्षेत्र हैं, जहॉ वृष्टि का अनुपात भी कम हैं, जल संग्रहण के विविध उपायों की व्यापक परम्पराएँ तलाशी जाती रही हैं।

**कूटशब्दः** नाड़ी, झालरा, टांका, खड़ीन, टोबा, कुड़ी, बावड़ी, जलीय संस्कृति, परिपेक्ष्य

**प्रस्तावना**
**शोध–प्रविधिः** प्रस्तुत शोध–प्रत्र, ऐतिहासिक विश्लेषण व वर्णनात्मक दृष्टिकोण पर आधारित हैं। शोध–सामग्री को प्रमुख पुस्तकों से संकलित किया गया हैं। वस्तुतः यह शोध पत्र द्वितीय आकड़ों पर आधारित हैं।

**शोध के उद्वेश्यः** प्रस्तुत शोध–पत्र निम्नलिखित आकड़ों पर आधारित हैं।

- इस शोध पत्र के माध्यम से राजस्थान की प्राचीन काल में जल सरक्षंण की विधियों की प्रमाणिक जानकारी प्राप्त की जा सकेगीं।
- इस शोध पत्र से जल सरंक्षण की प्राचीन विधियों को वर्तमान में कैसे प्रयोग में लाया जा सकता हैं। इस सम्बंध में भी चर्चा कि गई हैं।
- ये शोध पत्र न केवल जल के महत्व को सिद्व करता हैं बल्कि यह उसके सरंक्षण की विधियों पर भी प्रकाश ड़ालता हैं।

- प्रस्तुत शोध पत्र जलीय संस्कृति की परम्परा से अवगत कराता हैं।
- इस शोध पत्र जल सरंक्षण की नवीन परम्परा विकसित करने में सहायक हैं। राजस्थान भारत के उत्तर–पश्चिम में स्थित एक विशाल क्षेत्र हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान का भारत में प्रथम स्थान हैं। राजस्थान में जल की उपलब्धता बहुत ही कम हैं। यहॉ जल संसाधनों की उपलब्धता इस क्षेत्र की भू–आकृतिक स्वरूप एवं जलवायु दशाओं पर निर्भर हैं। इस क्षेत्र के पश्चिम में विस्तृत मरूस्थलीय क्षेत्र में कोई सदावाहिनी नदी नहीं हैं। मध्यवर्ती अरावली पर्वत एक अवशिष्ट पर्वत बन चुका हैं जिसका मानसून पर कोई नियंत्रण नहीं हैं तथा न ही कोई स्थायी जल स्त्रोत का पोषक हैं। इस प्रकार राजस्थान के क्षेत्र मे जल उपलब्धता को लेकर हमेंशा सकट ही रहा है। अतः जल संरक्षण को लेकर कई प्रकार ही विधियॉ अपनाई गई हैं।

## राजस्थान में जल संरक्षण की पारंपरिक विधियाँ

राजस्थान में जलयी संसाधनों की प्राचीन काल से ही कमी रही हैं इसिलिए प्राचीन काल से ही जल के सरंक्षण के लिए विभिन्न प्रकार की विधियों को अपनाया गया हैं। इन विधियों के प्रयोग के द्वारा काफी हद तक जल का सरंक्षण करने में बड़ी सफलता प्राप्त हुई हैं। इसी का परिणाम हैं कि मानव और जीव–जन्तुओं और वनस्पति को पर्याप्त मात्रा मं जल की आपूर्ति हो पाती हैं। जल सरंक्षण की प्रमुख विधियॉ निम्न प्रकार हैं।

**तालाबः** राजस्थान मे तालाब वर्षा जल को संग्रहित करने का एक प्राचीन स्त्रोत रहा हैं। इन तालाबों का निर्माण प्रायः शासकों के द्वारा करवाया जाता था। लगभग सभी क्षेत्रों में तालाबों का निर्माण करवाके जनता की जलीय आवश्यकता को पूरा करने का प्रयास किया जाता था। ये तालाब बहुत अधिक गहरे नहीं हुआ करते थे। सामान्यतः इन तालाबों की गहराई 5 से 7 फीट हूआ करती हैं। ये तालाब अनेक प्रकार की कलाकृतियों के होते थे। इन्हें हर प्रकार से रमणीक एवं दर्शनीय स्थल के रूप में विकसित किया जाता था।

**झीलेंः** झीलं भी जल संचय का परंपरागत स्त्रोत हं। राजस्थान में विश्व प्रसिद्व झीले रही हैं। इन झीलों का निर्माण राजाओं बंजारो और आम जनता के सहयोग से किया जाता था। अजमेर में स्थित आनासागर झील में नाग–पहाड़ के आस–पास के जल को संचित किया जाता थां। इसी प्रकार विश्व प्रसिद्व पुष्कर झील का अस्तित्व धार्मिक भावना से ओत–प्रोत हैं। उदयपुर में कई झीलें थी जिनमें वर्षा के जल का सरंक्षण किया जाता था। इन झीलों में जयसमंद, उदयसागर, फतेहसागर, राजसमंद, पिछोला झील विश्व प्रसिद्व हैं।

**बावड़ीः** राजस्थान में कुओं व सरोवर की तरह ही वापी (बावड़ी) निर्माण की परंपरा अति प्राचीन हैं। यहाँ पर हड़प्पा युग की संस्कृति में बावड़ियाँ बनाई जाती थी। धार्मिक ग्रन्थ विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र में बावड़ी निर्माण की जानकारी प्राप्त होती हैं। प्राचीन शिलालेखों में बावड़ी निर्माण का उल्लेख प्रथम शताब्दी में प्राप्त होता हैं। प्राचीनकाल में अधिकांश बावड़ियाँ मंदिरों के आसपास ही बनाई जाती थी। इसका उदाहरण दौसा जिले में आभानेरी (बॉदीकुई) में हर्षत माता मंदिर के साथ बनी चॉद बावड़ी हैं।

**कुंडी या टांकाः** राजस्थान के जलवायु एवं भौगोलिक परिस्थिति के कारण यहॉ हमेंशा ही जल संकट रहा हैं। इसी कारण प्राचीन समय से ही जल संग्रहण की परंपरा विकसित हो गई हैं। समाज के प्रबुद्व लोगों के द्वारा जल सग्रंहण की अविकसित की गई हैं जिनमें टांका भी एक महत्वपूर्ण विधि हैं। भूमिगत पक्के बने टैंक का स्थानीय नाम ही टांका हैं। इसका निर्माण वर्षा के बहकर जाने वाले जल को एकत्र. करने के लिए किया जाता था। जब टांके बनाये जाते थे तो उसके आसपास के क्षेत्र का ढ़ाल टांके कि तरफ रखा जाता था ताकि वर्षा का जल टांके में सग्रंहित किया जा सके। ये टांके खुले और बंद दोनों ही प्रकार के होते थे। टांके सार्वजनिक और निजी दोनों के उपयोगार्थ बनाये जाते थे। राजस्थान के रेतीले इलाकों के ग्रामीण क्षेत्रों में वर्षा के जल सग्रंहण के लिए कुंड निर्माण एक परंपरागत प्रणाली हैं। कुंड में एकत्रित जल को मुख्य रूप से पेय जल के रूप में प्रयोग किया जाता हैं। कुंड एक प्रकार से भूमिगत सरोवर होता था जिसे ऊपर से ढ़क दिया जाता था। इन कुड़ों का निर्माण सम्पूर्ण मरू प्रदेश में किया जाता था। राजस्थान के सभी मरूस्थलीय नगरों में जो हवेलियाँ बनाई जाती थी उनमें वर्षा जल के संग्रहण के विशिष्ट साधन और उपाय साथ में रखे जाते थे। वर्षा का जल छतों से होकर तहखानों तक जाता था और वहाँ संगृहीत होता था।[3] इन संग्रहों को टांका कहा जाता था।

**नाड़ीः** राजस्थान में सर्वप्रथम पक्की नाड़ी निर्माण का विवरण 1520 ई. में मिला हैं, जब राव जोधाजी ने जोधपुर के निकट एक नाड़ी बनवाई थी। नाड़ी एक प्रकार की पोखर होती हैं जिसमें वर्षा के जल को संचित किया जाता हैं। पश्चिमी राजस्थान में लगभग प्रत्येक गॉव में एक नाड़ी अवश्य मिलती हैं। नाड़ी का निर्माण करते समय वर्षाजल की मात्रा और जल ग्रहण के क्षेत्र को ध्यान में रखा जाता हैं। नाड़ी का निर्माण करने वाले स्थान से ही उसका आगोर (जलग्रहण क्षेत्र) एवं जल निकास क्षेत्र तय होता हैं। रेतीली मैदानी क्षेत्रां में नाड़ियॉ 3 से 12 मीटर गहरी होती हैं। इनका जलग्रहण क्षेत्र भी बड़ा होता हैं। यहॉ पर रिसाव कम होने के कारण इनका जल सात से दस महीने तक चलता हैं। जलोढ़ मिट्टी वाले क्षेत्रों में नाड़ी बडी हाती हैं, जिनमें जल आठ से बारह महीने तक चलता हैं। केन्द्रीय शुष्क अनुसंधान संस्थान (काजरी), जोधपुर के एक सर्वेक्षण के अनुसार नागौर, बाड़मेर एवं जैसलमेर में पानी की कुल आवश्यकता में से 37.06 प्रतिशत नाड़ियों द्वारा पूरी की जाती हैं।

**खडीनः** जल सरक्षंण की पारंपरिक विधियों में खडीन एक प्रमुख विधि हैं, यह एक बहुउद्देश्य व्यवस्था है। खडीन परंपरागत तकनीकी ज्ञान पर आधारित होती हैं। इसका विकास 15वीं सदी में जैसलमेर में पालीवाल ब्राहम्णों द्वारा किया गया था। खडीन के निर्माण हेतु राजा जमीन देता था, जिसके बदले उपज का एक–चौथाई हिस्सा उन्हें दिया जाता था। इस प्रकार पालीवालों ने पूरे जैसलमेर में लगभग 500 छोटी–बडी खडीन विकसित की, जिनमें आज 12,140 हेक्टेयर जमीन सिंचित की जाती हैं।

खडीन मिट्टी का बना एक अस्थायी बॉधनुमा तालाब होता हैं। इसे किसी ढ़ालवाली भूमि के नीचे निर्मित किया जाता हैं, इसके दोनों तरफ मिट्टी की पाल बनाकर तीसरी और पत्थर की मजबूत चादर लगाई जाती हैं। खडीन की यह पाल धोरा कहलाती हैं। इस धोरे की लंबाई पानी की आवक के हिसाब से कम या ज्यादा होती हैं, कुछ खडीन पॉच–सात किमी. तक चलती हैं। पाल सामान्तया 1.5 मीटर से 3.5 मीटर तक उॅची होती हैं। पानी की मात्रा ज्यादा होन` पर यह खडीन भरकर अगले खडीन में प्रवेश कर जाता हैं। इस प्रकार यह पानी धीरे–धीरे सूखकर खडीन की भूमि में नमी छोडता रहता हैं, जिसके बल पर फसलें उगाई जाती हैं।

**झालराः** राजस्थान के जलीय स्त्रोतों में झालरा भी एक अलग विधि हैं

झालराओं का कोई जल स्त्रोत नहीं होता हैं। ये अपने से उचाई पर स्थित तालाबों या झीलों के रिसाव से पानी प्राप्त करते हैं। इनका स्वयं का कोई आगोर नहीं होता हैं। झालराओं का पानी पीने के लिए उपयोग में नहीं लिया जाता हैं। झालरा का जल धार्मिक रीति–रिवाजों को पूर्ण करने, सामूहिक स्नान व अन्य कार्यों हेतु उपयोग में आता था। अधिकांश झालराओं का आकर आयताकार होता हैं, जिनके तीन और सीढियॉ बनी होती थी। इसी प्रकार का झालरा जोधपुर में 1660 ईमें बना महामंदिर झालरा था। वर्तमान समय में अधिकांश झालराओं का प्रयोग बंद हो गया हैं। राजस्थान में बने झालराओं का वास्तुशिल्प अपने आप में बडा अद्भूत होता था।

**कुॅई और डाइकेरियानः** कुॅई को कहीं–कहीं बेरी भी कहा जाता हैं। कुॅई पश्चिमी राजस्थान लोगों के कौशल का एक और उदाहरण हैं। कुॅई का निर्माण अक्सर तालाब के पास किया जाता था, जिनमें तालाब का रिसता पानी जमा होता रहता हैं। इस प्रकार पानी की बर्बादी कम से कम होती हैं। कुॅई सामान्यतः 10 से 12 मीटर होती हैं और कच्ची ही रहती हैं। इनका मुॅह अक्सर लकड़ी के पट्टों से ढंका होता हैं जिससे लोग या पशु गिर न जाएॅ।[4] वर्तमान समय में भी राजस्थान में कई स्थानों पर कुॅई देखी जा सकती हैं। बीकानेर की लूणकरण तहसील में बड़ी संख्या में कुॅई बनी हुई हैं। जैसलमेर जिले में मोहनगढ़ और रामगढ़ के बीच के गॉवों में जो भारत–पाक सीमा से लगे हैं तथा फलौदी जिले और दियातारा के बीच के गॉवों मे भी बड़ी संख्या में कुॅई मौजूद हैं। बेरियो का पानी बचाकर रखा जाता हैं और जब पानी खत्म हो जाए, तब इसका उपयोग किया जाता हैं। 1987 ई में जब भयंकर अकाल पड़ा और काफी सारे तालाब सूख गए, तब भी बेरियों में पानी आ रहा था। जल संसाधनों के अधिकतम संभव प्रयोग का स्थानीय ज्ञान एक आपात व्यवस्था में डाकेरियान में झलकता हैं। जिन खेतों में खरीफ की फसल लेनी होती हैं, वहॉ बरसाती पानी को घेरे रखने के लिए खेत की मेड़ें ऊॅची कर दी जाती हैं। यह पानी जमीन में समा जाता हैं। फसल कटने के बाद खेत के बीच में एक छिछला कुऑ खोद देते हैं, जहॉ इस पानी का कुछ हिस्सा रिसकर जमा हो जाता हैं। इसे फिर से काम में लिया जाता हैं।

**टोबाः** टोबा नाड़ी के समान आकृति वाला जल सग्रंह केन्द्र होता है। टोबा का आगोर (जलग्रहण क्षेत्र) क्षेत्र अधिक गहरा होता हैं। थार के रेगिस्तान में टोबा पारंपरिक जलग्रहण का एक प्रमुख स्त्रोत हैं। सघन संरचना वाली भूमि जिसमें पानी का रिसाव कम होता हैं, टोबा निर्माण हेतु उपयुक्त मानी जाती हैं। इसका ढलान नीचे की ओर होना चाहिए। टोबा के जल का प्रयोंग मानव व पशु दोनों के लिए किया जाता हैं। टोबा के आस–पास नमी होने के कारण प्राकृतिक घास उग जाती हैं। जिसे जानवर चरते हैं। मानसून आगमन के साथ लोग सामूहिक रूप टोबा के पास ढ़ाणी बनाकर रहने लगते हैं। सामान्तः टोबाओं में पानी सात–आठ महीने तक ठहरता हैं। इस प्रकार राजस्थान में जल के सरंक्षण के लिए विभिन्न प्रकार की विधियॉ प्रयोग में लाई जाती रहीं हैं, इन विधियों का महत्व प्राचीन काल से वर्तमान में भी बना हुआ हैं।

## जलीय संस्कृति और वर्तमान परिपेक्ष्य

जल मानव और अन्य सभी प्राणियों के लिए मूलभूत आवश्यकता हैं इसिलिए प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक जल की उपयोग और सरंक्षण को लेकर हमेशा ही प्रयास किय जाते रहे हैं। जल इस सृष्टि का आधार हैं। जल के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कि जा सकती हैं। वर्तमान मं विभिन्न सरकारें जल को लेकर अनेक प्रकार की योजनाएॅ अपनाती हैं। जिससे जल सरंक्षण की दिशा में बड़ी सफलता मिली हैं।[5] आधुनिक समय में जलीय संस्कृति को लेकर न केवल जन–सामान्य में बल्कि सरकारों के द्वारा भी प्रभावी कार्यप्रणाली को अपनाया गया हैं। आज जनता ओर सरकारों दोनों के द्वारा ही जल के उपयोग और सरंक्षण को लेकर व्यापक कार्य किया जा रहा हैं। राजस्थान में जल संसाधन विकास एवं प्रबन्धन पर अनेक सरकारी, अर्द्धसरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाएॅ कार्य कर रही हैं। इनमें अनेक शोध संस्थान एवं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थायें भी सम्मिलित हैं। ये इस प्रकार हैं।

**वाटर विजन 2045:** राज्य जल नीति एवं योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा जल की प्रत्येक बूॅद के अनुकूलतम उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए एक प्रभावी रणनीति के तहत राज्य में वाटर विजन, 2045 जारी किया गया। इसमें 2015 तक लघु अवधि तथा 2045 तक दीर्घ अवधि के लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं।[6]

**सेन्टर फॉर कम्यूनिटी इकॉनोमिक्स एण्ड़ डवलपमेटं कन्सल्टेंट सोसाइटीः** यह संस्था जयपुर (चाकसू) स्थित एन.जी.ओ. हैं, जो राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत हं। यह संस्था करीब 750 गॉवों में अपना कार्य क्षेत्र फैलाये हुए हैं। इसके कार्य क्षेत्र में जयपुर, जोधपुर, सीकर, सवाई माधोपुर, जैसलमेर, नागौर, टोंक, झालावाड़ तथा बांरा जिले सम्मिलित हैं। इस संस्था का कार्य क्षेत्र संस्थागत गॉवों का निर्माण, प्राकृतिक संसाधनों का प्रबन्धन, स्वास्थ्य एवं बाल विकास हैं। 1998 ई में इस संस्था ने 'जल प्रहरी' कार्यक्रम शुरू किया था।

**वेल्स ऑफ इंण्ड़िया:** ब्रिटेन आधारित यह एक चेरीटेबल संस्था हैं, जिसका स्थानीय लोगों एवं गैर–सरकारी संस्थाओं के साथ कार्य करती हैं। इसका कार्य क्षेत्र उत्तरी–पश्चिमी भारत हैं जो कि अरावली पर्वत, थार मरूस्थल तथा सांभर झील हैं। इसका विभिन्न कृषि जलवायु प्रदेशों में जल सरंक्षण पर जोर हैं। परम्परागत जल स्त्रोंतो का पुनः जागरण, पशुचारा एवं खाद्य सुविधा का विस्तार मुख्य उद्वेश्य हैं।

**जल भागीरथी फाउंडेशन (J.B.F):** जल भागीरथी फाउंडेशन राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करती हैं। इस संस्थान का मुख्य कार्य क्षेत्र मारवाड़ ;थार मरूस्थलद्ध रहा हैं। जल भागीरथी फाउंडेशन का मुख्य कार्य परम्परागत जल स्त्रोतों की रचना, पुनःरचना एवं जन–सहभागिता के आधार पर जल का संरक्षण एवं पुनर्भरण रहा हैं। यह संस्थान संयुक्त राष्ट्र अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों के कार्य करती हैं। 'पनिहारिन परियोजना' इस दिशा में एक कदम हैं जो स्वच्छ स्वास्थ्यवर्द्धक जल संरक्षण का एक अनूठा कदम हैं। राजस्थान के बाढमेंर में यह कार्य सराहनीय हैं।

**सेंटर फॉर साइन्स एवं इनवाइरनमेंटः** दिल्ली स्थित यह संस्थान जनहित, शोध एवं उनके मुद्दों पर कार्य करती हैं। यह केन्द्र जल एवं पर्यावरण से जुड़े विषयों सम्बन्धी रचनाएॅ Down to Earth पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित करता हैं।

**तरूण भारत संघ (T.B.S):** तरूण भारत संघ एक गैर सरकारी संस्थान हैं जो अलवर में कार्यरत है। राजेन्द्र सिंह इसके संस्थापक हैं। इसका कार्यक्षेत्र अरावली की तलहटी में रहा हैं। इसके द्वारा करीब जोहड़ बनाकर गॉवों में जल संरक्षण करना हैं। इसका मुख्य उद्वेश्य जल संरचना निर्माण एवं जन चेतना फैलानी हैं।

**सद्गुरू वाटर डवलपमेंट फाउन्ड़ेशनः** यह गुजरात के दाहोद में स्थित स्वयंसेवी संगठन हैं। इसकी स्थापना 1974 ई. में हुई थी। नवीन चन्द्र मफतलाल सद्गुरू वाटर डवलपमेंट फाउन्ड़ेशन एक स्वयंसेवी संस्थान हैं। इस संगठन का कार्यक्षेत्र राजस्थान एवं गुजरात को बनाया हैं इसका मुख्य उद्देश्य जन–सहभागिता, पूर्ण जल संसाधनों का विकास एवं कम्युनिटी को जरूरी सेवाएँ उपलब्ध कराना हैं। माही नदी क्षेत्र इस संस्था में लघु वाटरशेड़ कार्यों, वर्षा जल संरक्षण एवं मिशनरी कार्यों सहयोग करना हैं।

**अरग्यामः** अरग्याम एक चेरीटेबल ट्स्ट हैं जो बैंगलोर (कर्नाटक) में स्थित हैं। यह टस्ट भी जल संसाधनों के विकास, संवर्द्धन एवं संरक्षण के क्षेत्र में कार्यरत हैं। इसका मुख्य कार्य जल एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य हैं। राजस्थान में इस ट्स्ट ने सेवा मन्दिर संस्थान को जयसमन्द एवं उदयपुर के 12 गॉवों में पेयजल उपलब्ध कराने में मदद कर रहा हैं।

**एसोसियेशन फॉर रूरल एडवान्समेंट थ्रू वॉलेन्टरी एक्सन फॉर लोकल इन्वॉल्वमेंन्टः** अरावली (ARAVALI) एक रजिस्टर्ड संस्था हैं। इसकी शुरूआत 1994 ई. में हुई थी। इसमें राज्य की करीब 20 संस्थाएँ जुड़ी हैं तथा 70 संस्थाओं से आपसी सूचनाएँ एकत्र करने का कार्य होता हैं। इसका मुख्य कार्य सरकारी विभागों, स्वयंसेवी संस्थाओं एवं शोध संस्थाओं में सहयोग स्थापित करना हैं।[7]

**भारूका चेरिटेबल ट्स्ट (B.C.T.):** भारूका चेरिटेबल ट्स्ट की स्थापना 1962 ई में हुई थी। यह संस्था तीन राज्यों में कार्यरत हैं। जिसमें चूरू जिले के 350 गॉवों में इसका कार्य क्षेत्र फैला हैं। वाटरशेड़ डवलपमेंट में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान हैं।

**राजस्थान की राज्य जल नीति 2010: राजस्थान राज्य जल नीति 17**

फरवरी, 2010 ई. मे लागू हुई। इस जलनीति की प्रस्तावना में राजस्थान जल के संकट की स्थिति का आकलन करते हुए विभिन्न पहलुओं पर नीति निर्धारण किया गया हैं। प्रस्तावना में जल क्षेत्र में प्रमुख समस्याओं की तरफ ध्यान दिलवाया गया हैं जो निम्न प्रकार हैं।

1. जल की मॉग एवं आपूर्ति में बढ़ता असंन्तुलन।
2. भूजल संसाधनां का गिरता स्तर एवं जल की गुणवता में गिरावट।
3. उपभोक्ताओं में स्वामित्व का अभाव।
4. सेवा में उच्च लागत, लागत की कम वसूली एवं रख–रखाव पर व्यय की कमी।
5. जल की उपलब्धता की अनिश्चितता।
6. जल तक पहुॅच में असमानता।
7. जल संसाधनों की अल्प कार्य दक्षता।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. https://panchjanya.com
2. मनुस्मृति पेज सं. 4/56
3. सुजस, जून, 2018 पेज सं. 16–19
4. डॉ. बी. सी. जाट, सुरेश चन्द्र जाट, राजस्थान का भूगोल, मलिक बुक कम्पनी, जयपुर 2023 पेज. सं. 103
5. डॉ. हरि मोहन सक्सेना, राजस्थान का भूगोल, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 2021 पेज. सं. 87
6. डॉ. पवन शर्मा, राजस्थान का भूगोल, पारीख पब्लिकेशन, जयपुर 2019 पेज सं. 52
7. https://aravali.org.in